३

आसोज शुक्ल ९, गुरुवार, १५-१०-१९६४
श्री तारणस्वामी द्वारा रचित श्रावकाचार
गाथा-११५, १३२, १३३, १३४, १४२, १६८, १६९, प्रवचन - २०

..... श्रावकाचार का वर्णन क्या है? श्रावक को मद्य.. मद्य-शराब नहीं होना चाहिये। शराब। दारू को शराब कहते हैं न? शराब का पीना। यहाँ तो अध्यात्म में शराब उतारा है। बनारसीदास में सब आता है। देखो! ११५ गाथा।

जिन उक्तं न श्रद्धते, मिथ्या रागादि भावनं।
अनृतं ऋृत जानाति, ममत्वं मान भूतयं॥११५॥

है ११५? जिनेन्द्र के कहे हुए उपदेश का श्रद्धान नहीं करता। पहला शब्द यह है। जिनेन्द्र '**उक्तं**'। सर्वज्ञ वीतराग एक समय में जिनको वीतरागता और विज्ञानघनता, तीन काल—तीन लोक का ज्ञान जिनको हुआ है, ऐसे वीतराग हैं। और उनको केवलज्ञान—तीन काल तीन लोक जानते हैं, ऐसा ज्ञान भी है। ऐसा आस्थापूर्वक कहते हैं। '**जिन उक्तं**' परमेश्वर वीतरागदेव ने '**उक्तं**' अर्थात् कहा। छह द्रव्य, पंचास्तिकाय, नौ तत्त्व, '**उक्त न श्रद्धते**। ऐसे आत्मा को, छह द्रव्य को नहीं मानते हैं।

'**मिथ्या रागादि भावनं**'। झूठे राग की भावना द्वारा। मिथ्या राग-द्वेष की भावना सदा किया करते हैं। विपरीत पर्याय, राग-द्वेष-मोह की पर्याय में लीन होते हैं और अपना स्वभाव शुद्ध चैतन्य, सर्वज्ञ ने जैसा कहा, ऐसा नहीं मानते हैं, वह मदिरा पीनेवाला जैसा कहने में आया है। कहो, डालचन्दजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पागलपने में पागल हुआ है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतराग की परीक्षा करना, वह तो सबको कहते हैं। इसलिए पहला शब्द लिया है। '**जिन उक्तं**' शब्द लिया है। अपने घर की बात नहीं करते हैं। '**जिन उक्तं**' है न? पण्डितजी! जिन कौन हैं, अजैन कौन है, अन्य क्या कहते हैं, जैन क्या कहते हैं, उसका दो का टोटाल करके, तुलना करके ही निर्णय करना चाहिए। समझ में आया? सेठी! यहाँ तो सब ... कहते हैं, हमारे भगवान कहते हैं, वह सत्य, हमारे भगवान ने कहा वह सत्य। नहीं करना चाहिए? जिन कौन है, जिन ने कैसा.. वह पहले कहा, जिनको वीतरागता पूर्ण हो गयी है और जिनको केवलज्ञानघन एक समय में तीन काल-तीन लोक को जानने की पर्याय प्रगट हो गयी है, ऐसे परमेश्वर को अरिहन्त कहने में आया है। यहाँ '**उक्तं**' शब्द प्रयोग किया है, इसलिए सिद्ध नहीं है। जिनको सर्वज्ञपद और वीतरागपद प्राप्त हुआ, उन्होंने कहा हुआ। ऐसा शब्द है न। '**उक्तं**'। तो सिद्ध तो कह सकते नहीं। समझ में आया? सिद्ध को तो भाषा है नहीं।

वह कहा कि, '**जिन उक्तं**'। अर्थात् अरिहन्त पद में जो वाणी निकली है। पूर्णानन्द प्राप्त और वीतराग होने पर भी वाणी आती है, इतना भी सिद्ध किया। पूर्ण हो और उसके बाद वाणी होती ही नहीं, ऐसी बात है नहीं। और वाणी, वाणी के कारण से निकलती है। उसको व्यवहार से '**जिन उक्तं**' वीतराग ने कहा हुआ, ऐसा कहने में आया है। कहो, समझ में आया? डालचन्दजी! वीतराग तो कहे कि हमारा पूर्ण मार्ग है, दूसरा कहता है कि हमारे में पूर्ण है। तो तुलना करनी चाहिए या नहीं? परीक्षा करनी चाहिए। '**जिन उक्तं**'। सर्वज्ञ परमात्मा आत्मा का स्वभाव... आगे अभी कहेंगे, पूर्ण सर्वज्ञस्वभाव ही आत्मा का है। कल आया था। सर्वज्ञ आत्मा का त्रिकाल स्वभाव है। उसका जिसको भान होकर अनुभव होकर केवलज्ञान प्रगट हुआ और वह वाणी जो निकली, उसको '**जिन उक्तं**' कहने में आता है। तो उसका अर्थ—जिनागम। वीतराग ने कही वाणी को जिनागम कहने में आता है। जिनागम के सिवाय सत्य बात तीन काल में दूसरे में कहीं नहीं है। पहले तो जैन को ही नहीं माने, समझ में आया? उसकी मान्यता तो बिल्कुल विपरीत, अज्ञानी पागल है। पागल है, पागल। पागल कहते हैं न?

'**मिथ्या रागादि भावनं**'। देखो! सूक्ष्म बात की है। अपना स्वभाव सर्वज्ञ ने कहा,

ऐसा नहीं मानकर, मिथ्या श्रद्धा में अल्प सदा अल्पज्ञ हूँ, मैं परमेश्वर का भक्त ही रहने के लायक हूँ, परमेश्वर कोई दूसरा कर्ता है, उसका मैं सदा दास रहूँगा। मोक्ष में भी भगवान का भक्त ही बना रहता है—ऐसी जिसकी भावना है, वह मिथ्याश्रद्धा और मिथ्या राग की भावना करता है। समझ में आया? क्यों सेठ नहीं आये? टाईमसर आना चाहिए।

'**अनृतं ऋृत जानाति**'। ... सच मानते हैं। देखो! है न? '**अनृतं**' अर्थात् झूठ कल्पित को '**नृत**' अर्थात् सच्चा। झूठा को सच्चा माने और सच्चे को झूठा माने। तो झूठा-सच्चा क्या है, उसकी उसने परीक्षा करनी चाहिए। कल आया था न? '**परिच्छये**'। परीक्षा किये बिना माने कि हमारा मार्ग ठीक कहता है, भगवान ठीक कहते हैं, ऐसा नहीं। समाज में जन्म हुआ फिर भी क्या कहते हैं और उसका सत्य क्या है, ऐसी परीक्षा बिना माने तो झूठ है, कल्पित है, उसे सच्चा जान लेता है। कहो, समझ में आया?

श्रावक उसको कहते हैं कि जिसको, '**जिन उक्तं**'—वीतराग परमात्मा ने कही वाणी-आगम, उस आगम में कहे पदार्थ—छह द्रव्य, नौ तत्त्व, पंचास्तिकाय अनादि-अनन्त पदार्थ हैं, ऐसा जो श्रद्धा में लेता है और आत्मा ज्ञायकस्वरूप अखण्डानन्द पूर्ण है, ऐसा श्रद्धा में लेता है, उसे श्रावक का आचार कहने में आता है। यहाँ अनाचार की बात की है। श्रावक मद्य नहीं पीता। मद्य-दारू। दारू का अर्थ अज्ञानी का कहा हुआ माने तो दारू पिया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मूढ़ है, उसने भी दारू पिया है। ज्ञानी का नहीं माने और अज्ञानी का भी नहीं माने तो वह तो मूढ़ हुआ। किसी का नहीं मानना, (वह तो) स्वच्छन्द हुआ। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मानता है।

झूठ—'**अनृतं**' को सच्चा जान लेता है। ममता और अभिमान का भूत उस पर चढ़ा रहता है। भूत लगा है, सिर पर भूत (चढ़ा है)। हम समझे वह बराबर है, हमने समझा वह बराबर है। भगवान क्या कहते हैं, भगवान की वाणी क्या कहती है, उसकी साथ तो मिलान

करता नहीं। उसको यहाँ ममता का, मान का भूत (सिर) पर सवार हो गया है, वह दारू पीनेवाले जैसा पागल है। परीक्षा करनी चाहिए। श्रावक-श्रावक ऐसे नहीं होता, जैन में आ गया तो। समाजभूषण नाम दे दिया है तुमको।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : सिर पर बड़ी जिम्मेदारी आयी है। समझ में आया? देखो!

तारणस्वामी ११५वीं गाथा में, शराब पीनेवाला जैसे मद्य में पागल हो जाता है, ऐसा जिनोक्त कहे प्रमाण से विरुद्ध मानता है, अन्य का कल्पित पदार्थ अज्ञानियों ने (कहा हुआ कि) एक आत्मा ही है, जड़ ही है, अथवा सब द्रव्य एक होकर रहते हैं, ऐसा कल्पित तत्त्व कहे, उसको माने तो पागल जैसा, दारू पीनेवाले जैसा उसको माननेवाला कहते हैं। कहो, समझ में आया? ११५ हुई। ११५ हुई न? १३२। थोड़ी खास-खास गाथा सारा देखकर लिख लिया है। १३२। चोरी। चोरी-चोरी किसको कहते हैं? पण्डितजी! चोरी किसको कहते हैं?

स्तेयं दुष्ट प्रोक्तं च, जिन वचनं विलोपितं।
अर्थ अनर्थ उत्पादी, स्तेय व्रत खंडनं॥१३२॥

दु:खकारी, अहितकारी वचनों का कहना। '**दुष्ट प्रोक्तं**' है न? '**दुष्ट प्रोक्तं**'। वास्तविक तत्त्व से उल्टा कथन करना। भगवान का कथन जो है, परमात्मा ने कहा, गणधरदेव ने आगम में रचा, उससे विरुद्ध कोई कहता है, वह दुष्ट, दु:खकारी वचनों का कहनेवाला सत्य का चोर है। चोर है। त्यागी होकर भी यथार्थ वीतरागमार्ग से विरुद्ध कल्पित अज्ञानी का कथन माने और कहे, वह चोर है। ... कितनी जवाबदारी है! ऐसे जैनमार्ग में करोड़पति हो या अरबोंपति हो तो उसके मुनीम को दस रुपये का वेतन दे मुनीमपना करे ऐसा हो सकता है? दस रुपये का वेतन दे, वह कितना काम कर सके? उसका मुनीम बड़ा होना चाहिए।

ऐसे सर्वज्ञ परमात्मा जिनागम की श्रद्धा-ज्ञान कहनेवाला महान ज्ञानी, श्रद्धावन्त, वास्तविक विवेक, भान है, सर्वज्ञ का मार्ग है, अज्ञानी का यह है, सबका विवेक हो, वह उसका कथन कर सकता है। दूसरे में विरोध आये बिना रहता नहीं। कहीं भी एक भी विरोध घुस जाए तो पूरे शासन का लोप हो जाए। देखो! यह कहते हैं।

'स्तेय दुष्ट प्रोक्तं च, जिन वचन विलोपितं' देखो! प्रत्येक गाथा में रखा है, जिनवचन, जिनवचन। वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ जैन परमेश्वर, उन्होंने एक आत्मा को अनन्त गुण का राशि कहा। ऐसे अनन्त आत्मा, उससे अनन्तगुना परमाणु, ऐसी बात जो कही, उसमें एक आत्मा अपना पूर्ण ज्ञायकभाव अनन्त गुण की राशि, उसकी प्रतीत किये बिना, **'जिन वचन विलोपितं'** वीतराग का वचन लोप करता है, नाश करता है। **'अर्थ अनर्थ उत्पादी'**। अर्थ का अनर्थ उत्पन्न करता है। देखो! शास्त्र में क्या कहना है? भगवान को क्या कहना है? अर्थ का अनर्थ करता है।

यशोविजय हुआ है न? श्वेताम्बर में (हुए)। उसने कहा है, 'जाति अंधनो दोष नहीं आकरो,' जाति अन्ध समझते हो? अन्धा। जन्म से अन्धा। वह यहाँ कहते हैं, देखो! 'जाति अंधनो दोष नहीं आकरो, जो जाणे नहि अर्थ'। जन्मअन्ध क्या जाने बेचारा, क्या शब्द है, क्या है? 'जाति अंधनो दोष नहीं आकरो' गुजराती है। 'जे जाणे नहि अर्थ, मिथ्यादृष्टि तेथी आकरो, करे अर्थनो अनर्थ...' है शब्द? अर्थ, अनर्थ। है? शब्द है या नहीं? मिथ्यादृष्टि अन्धा अज्ञानी, वास्तविक वीतरागमार्ग की पहचान बिना, पर का कथन और वीतराग के कथन को मिश्र करता है, उसको खबर नहीं है कि मैं क्या जिनवचन लोपता है, उसको यहाँ चोर कहने में आया है। वीतराग का वह चोर है। सर्वज्ञ परमात्मा के कथन में आया, उससे विरुद्ध कहनेवाले को यहाँ चोर कहने में आया है। पण्डित हो और त्यागी हो और मुनि हो, परन्तु यदि वीतरागमार्ग से विरुद्ध माने तो वह चोर है। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : विपरीत ही करे। इसलिए यहाँ कहते हैं।

'जिन वचन विलोपितं। अर्थ अनर्थ उत्पादी' अर्थ का अनर्थ उत्पन्न करता है। क्या भाव है शास्त्र में, द्रव्य-गुण-पर्याय कैसी चीज़ है, कैसी परिपूर्णता है, कैसी अपूर्णता है, कैसा विकार है, कैसा द्रव्यस्वभाव है, कैसा लोकालोक स्वभाव है, वह खबर नहीं। अपनी कल्पना से शास्त्र का अर्थ का अनर्थ **'उत्पादी'** (उत्पन्न करता है)। है भैया? उसमें अर्थ नहीं है। उसका अर्थ है, देखो! अर्थ का अनर्थ करना भी, **'उत्पादी'** अर्थात् करना, करना भी चोरी है। अर्थ का अनर्थ करना वह भी चोरी है। पण्डितजी! ...में बैठना और

पोल चले, ऐसा नहीं चलेगा। वैसे सर्वज्ञ भगवान की दुकान पर बैठकर उसका मार्ग क्या है यह समझ में आये नहीं (और) कहे कि ऐसा है, वैसा है, ऐसा है। समझ में आया? रागादि, पुण्य आदि से धर्म मनावे, देह की क्रिया आत्मा कर सकता है, ऐसा मनावे, ऐसा माननेवाला भगवान के अर्थ का अनर्थ करता है। चोर है। चोरी करके चौरासी की गति में चला जाएगा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... नहीं होता। अन्तर दृष्टि में ज्ञायक का आचरण करके, यहाँ व्यवहार की बात नहीं की है। व्यवहार है, ऐसा पहले कहा, ... की बात है। हो। शुभराग आता है ऐसा। समझ में आया? ऊमर का त्याग.. क्या कहते हैं? फल। ... ऐसा विकल्प होता है। और यहाँ क्या कहा? जालगालन आदि क्रिया (होती है)। क्रिया क्रिया के कारण से होती है। ऐसा मैं कर सकता हूँ, पानी छानने की क्रिया मैं कर सकता हूँ, वह जिन-आज्ञा को विलोप करनेवाला है। वह तो पर की क्रिया है। कर सकता नहीं, करे क्या? विकल्प ऐसा आता है। समझ में आया? सब समझना पड़ेगा, हों!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : चोरी, आत्मा का स्वभाव वीतराग भगवान जो कहते हैं, उससे विरुद्ध मानते हैं, वह चोर है। चोरी क्या, दूसरे की चीज़ लेना (चोरी है)? अपने स्वभाव में नहीं है, ऐसा विरुद्ध कहनेवाला पर को अपना मानता है, वह चोर है। अपना बनाया, माना, जाना। वह क्रिया मैं कर सकता हूँ, जल गालन फलानी-ढिकनी ... आती है न सब? जड़ की क्रिया है। आत्मा कर सकता नहीं। विकल्प आता है, बस! उतनी मर्यादा है। विकल्प आता है, वह भी धर्म नहीं। पण्डितजी!

मुमुक्षु : कठिन पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन क्यों पड़े? ....

आत्मा है, ... भगवान समझने (वाले को) समझाते हैं या नहीं? या नहीं समझ सकता है, उसे समझाते हैं? तुम नहीं समझ सकोगे, ऐसा कहते हैं? क्या कहते हैं यहाँ? तारणस्वामी क्या कहते हैं? आप समझ सकते हो, ऐसा समझो।

जो कोई अर्थ का अनर्थ करते हैं, '**स्तेय व्रत खंडनं**'। सम्यग्दर्शनसहित व्रत कोई व्रत लिया हो और बाद में व्रत में खण्डन कर दे, वह भी चोर है। कहो, समझ में आया? ... करे, शास्त्र में कुछ कहा हो (और) अपनी स्वच्छन्द कल्पना से परम्परा मार्ग दूसरा चलाये, मार्ग का विरोध हो जाए तो कहते हैं, वह सब ठग, अनन्त गणधरों, अनन्त तीर्थंकरों, जिनवाणी का चोर है। सत्य को समझता नहीं। बड़ी जिम्मेदारी है, ये धर्म मार्ग है। पोपाबाई का राज नहीं है। कहते हैं न? उसमें बहुत अर्थ लिया है। देखो! सब आया।

सर्वज्ञ मुख वाणी च, शुद्ध तत्त्वं समाचरतु।
जिन उक्तं लोपनं कृत्वा, स्तेयं दुर्गति भाजनं॥१३३॥

यह चोरी। सर्वज्ञ वीतराग अरिहन्त भगवान के मुखारविन्द से प्रगट वाणी। देखो! कोई कल्पना अज्ञानी की नहीं। त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा एक समय में त्रिकाल ज्ञान है, ऐसा 'सर्वज्ञ मुख' शब्द लिया है, देखो! अरिहन्त लेना है न? यहाँ अरिहन्त लेना है। सिद्ध तो पूर्ण हो गये, उनको कहाँ वाणी है? सर्वज्ञ के मुख में से वाणी आयी। ओहो! सर्वज्ञ हुए तो भी वाणी है। ऐसा संयोग सम्बन्ध है। सर्वज्ञ पूर्णानन्द हो गया, फिर वाणी कहाँ है। वे तो समा गये। ऐसा नहीं है। सुन तो सही। समा गये। फिर भी सर्वज्ञ वीतराग भगवान के मुखारविन्द। मुखारविन्द-मुखरूपी कमल। उससे जो वाणी निकली, उस वाणी के अनुसार... है न? शुद्ध तत्त्व, शुद्ध आत्मिक तत्त्व का अनुभव करो। '**समाचरंतु**' अर्थात् अनुभव करो। अनन्त पदार्थ सिद्ध करके, छह द्रव्य प्रतीत करके, मेरा आत्मा... देखो! यह श्रावकाचार! ज्ञायक पूर्णानन्द, ज्ञान से ज्ञान का आचरण करो। ज्ञान से ज्ञान का आचरण करो। ज्ञान से ज्ञान का आचरण करके केवलज्ञान होता है। ज्ञान में राग का आचरण और क्रिया का आचरण से केवलज्ञान होता नहीं। समझ में आया? बीच में आता है व्यवहार विकल्प, परन्तु उस आचरण से केवलज्ञान (नहीं होता)। वह राग, विकल्प मुक्ति का मार्ग है, ऐसा वीतराग मार्ग में है नहीं। और माने कि राग से भी मुक्ति होती है, राग की परम्परा से मोक्ष कहते हैं, कोई राग से मोक्ष नहीं कहते। उसमें सच्चा क्या? समझ में आया? व्यवहार करते, करते, करते, दया, दान, भक्ति, ... पालते-पालते मोक्षमार्ग हो जायेगा। महँगा पड़ेगा। ऐसे नहीं होगा। राग से नहीं। दृष्टि में पहले छोड़ना पड़ेगा।

दृष्टि में राग हेय मानकर, स्वभाव ज्ञायक चिदानन्द को उपादेय मानकर, जो भगवान ने कहा, '**शुद्ध तत्त्वं समाचरतु**'। देखो! वाणी का सार कहा। पहले तो '**जिन उक्तं**' सत्य माना। परन्तु सार क्या है? '**शुद्ध तत्त्वं समाचरतु**'। अकेला शुद्ध भगवान ज्ञानमूर्ति प्रभु, उसमें '**शुद्ध तत्त्वं**' स्वभाव त्रिकाली।'**समाचरतु**' वह पर्याय आयी। द्रव्य त्रिकाल शुद्ध ज्ञायक अखण्ड एक अभेद वस्तु। एक ... समाचरण। उसमें आचरण करना। सम आचरण। उसमें स्थिर होना। श्रद्धा, ज्ञान और लीनता निर्विकारी वीतरागी पर्याय, ये तीनों वीतरागी पर्याय है। वीतरागी पर्याय '**समाचरतु**' यह वीतराग का मार्ग है, यह श्रावकाचार है। डालचन्दजी! मूल मार्ग तो इस तत्त्व को समझे बिना, लाख बाह्य क्रिया करे, दान, भक्ति, पूजा, मन्दिर, वाणी की पूजा सब राग, राग और राग-विकल्प है। उसमें कुछ धर्म है नहीं। समझ में आया?

शुद्ध तत्त्व का अनुभव करो। भगवान की वाणी में तो यह आया है।'लाख बात की बात निश्चय उर आणो।' आता है या नहीं? छहढाला में आता है। प्रेमचन्दजी! आता है न? लाख बात की बात—सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ की वाणी में ऐसी दिव्यध्वनि आयी, सौ इन्द्र के बीच में समवसरण में वाणी आयी, उस वाणी में यह आया-शुद्ध तत्त्व का (आचरण करो)। अहो! तेरा पूर्णानन्द अरागी वीतरागी समस्वरूपी चैतन्य, उसका अन्तर आचरण करो। उसमें श्रद्धा-सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र तीनों आचरण अन्तर निर्विकल्प (करो)। उसका नाम भगवान श्रावकाचार (कहते हैं)। देखो! लोग तो चिल्लाते हैं।

रात को एक विचार ऐसा आया था, भाई! प्रवचनसार में आता है न? श्रावक को निश्चय का अवकाश नहीं है। वह तो अपेक्षा से बात की है। आता है न? वह तो चारित्र-स्थिरता की अपेक्षा से बात है। यहाँ तो श्रावक को ये करनी, ये करनी और ये करनी, ऐसा ही कहते हैं। समझ में आया? पंचम गुणस्थान और चौथे गुणस्थान में। आता है न? भाई! श्रावक को निश्चय का अवकाश नहीं है। शुद्ध उपयोग की लीनता बारम्बार आवे, ऐसा आचरण नहीं है। परन्तु यह वस्तु तो.. वह तो मुनि के योग्य जो आचरण है, वह श्रावक को नहीं हो सकता। पूर्ण शुद्धउपयोग की लीनता, लीनता, लीनता।

सर्वज्ञ मुखवाणी में यह आया है। सब शास्त्र का सार और तात्पर्य यह आया है, ऐसा कहते हैं। शुद्ध तत्त्व समाचरण। भगवान की वाणी में... आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य भी पाँचवीं गाथा में कहते हैं, अहो! हमारे गुरु ने हम पर कृपा करके शुद्ध आत्मतत्त्व का उपदेश दिया। बस, यह शब्द है। पाँचवीं गाथा में आया है, समयसार। हमारे गुरु ने हमको शुद्ध आत्मा... उसमें बहुत आ गया। पर्याय में अशुद्धता है, निमित्त, अशुद्धता है, .. है, अशुद्धता अनादि की न हो तो शुद्धता प्रगट करने की होती नहीं। हमारा आत्मा शुद्ध है तो पर्याय में शुद्धता प्रगट करो। प्रगट पर्याय में होता है, शक्तिरूप कायम रहता है, ऐसा हमारे गुरु ने हमको उपदेश दिया। इसलिए हमारा निज वैभव हमको प्रगट हुआ है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, शुद्ध तत्त्व अनुभवो। समाचरंतु का अर्थ सम्यक् आचरंतु। सम्यक्-सम आचरंतु। सम्यक्, जैसा आत्मा का स्वभाव है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान। ऐसे प्रकार की श्रद्धा-ज्ञान का आचरंतु, वह श्रावक का आचार भगवान की वाणी में आया है। कोई कहे कि इसमें तो व्यवहार का लोप हो जाता है। सुन तो सही! व्यवहार बीच में आता है। निश्चय के आचरण के बीच में पूर्ण निश्चय जब तक नहीं हो, तब तक बीच में देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, विनय... यद्द सच्चे देव-गुरु, हों! उनका विनय, बहुमान का विकल्प आता है। पंचम गुणस्थान योग्य बाहर व्रत का विकल्प आता है। परन्तु वह राग है। निश्चय मार्ग में व्यवहार आता है, परन्तु व्यवहार मोक्ष का कारण है, ऐसा वीतराग की वाणी में आया नहीं। समझ में आया?

'जिन उक्तं लोपनं कृत्वा'। ऐसी वीतराग की जो वाणी, ... पहले **'सर्वज्ञ मुख'** कहा, यहाँ **'जिन उक्तं'** कहा। ऐसा वीतराग परमेश्वर ने आत्मा शुद्धस्वभाव अन्दर है, पर्याय में अशुद्ध है। वह दृष्टि छोड़कर शुद्ध का अनुभव करो, दृष्टि करो, ऐसी जो वाणी है तो ... निमित्त है। छह द्रव्य है, सब है। ऐसा **'जिन उक्तं लोपनं कृत्वा'** उसका लोप करके **'स्तेयं दुर्गति भाजनं'**। दुर्गति का पात्र है। नरक और निगोद में जायेगा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? है न? भैया! **'स्तेयं दुर्गति भाजनं'** वह दुर्गति में भटकने वाला है, दुर्गति में जानेवाला है। समझ में आया? १३३ हुई।...

दर्शन ज्ञान चारित्रं, अमूर्तं ज्ञान संजुतं।
शुद्धात्मानं तु लोपंते, स्तेयं दुर्गति भाजनं॥१३४॥

समझ में आया ? आहा ! जो कोई आत्मा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रमय अमूर्तिक ज्ञानमय। भगवान अमूर्तिक आत्मा। जिसमें वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श कुछ है नहीं। तब है क्या ? सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र से भरा पड़ा ऐसा अमूर्तिक ज्ञानमय शुद्ध आत्मा को... '**शुद्धात्मानं तु लोपंते**' '**लोपंति**' का अर्थ जानते नहीं, समझते नहीं और उसके शुद्ध स्वरूप का अनादर करते हैं, वह शुद्ध का लोप करते हैं,—'**लोपंते**'। समझ में आया ? परन्तु उसके सिवाय किसी धर्म को पालते हैं। ऐसे आत्मा को छोड़कर, ऐसा परमात्मा ने कहा है ऐसे आत्मा की दृष्टि, ज्ञान, आचरण छोड़कर दूसरे भाव में लग जाते हैं और उससे मेरा कल्याण होगा, वह मेरा श्रावकाचार है, ऐसा माननेवाला दुर्गति भाजन है। भाषा कठिन पड़ती है। ... कड़क भाषा है। सत्य है। दुर्गति जाएगा।

वीतराग सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमेश्वर, सौ इन्द्र से पूजनीक प्रभु की वाणी में क्या आया ? और वे क्या कहते हैं, उसे समझे बिना, तेरे घर की कल्पना से तू श्रावकाचार चलाता है और मानता है कि मैं श्रावक हो गया, दुर्गति भाजनं। दुर्गति में भटक जाएगा। चार गति में दुर्गति वास्तविक दुर्गति निगोद है। समझ में आया ? कोई ठिकाने ये पद्य है न, पद्य, कोई बार ऐसा ... किया, कोई बार नरक में जाएगा, कोई बार निगोद में जाएगा, ... समझ में आया ?

'**शुद्धात्मानं तु लोपंते**' देखो ! शुद्धात्मतत्त्व का लोप करते हैं, ऐसे धर्म को पालते नहीं और उल्टे धर्म को आत्मा का धर्म कहते हैं, वे चोरी के भागी हैं। अपना स्वभाव तो लुटाया। विपरीत श्रद्धा में अपने स्वभाव को लुटाया। वह चोर हुआ। अपनी सम्पदा लुट गई। किसकी चोरी करनी है ? माल गया, वह चोरी हो गयी। विकार का लाभ हुआ। अनन्त काल से अर्थ का अनर्थ करके आगे-पीछे करके कहता है, (वह) शास्त्र को, भगवान के अर्थ को, और अपने शुद्धात्मा का लोप करता है, (वह) '**स्तेयं दुर्गति भाजनं**'। वह दुर्गति में जानेवाला भाजन है। कहो, समझ में आया ? १४२। वह आ गया है। ... हो गया न ? १४२। पण्डितजी ! कैसा अर्थ करना और कैसे समझना, वह चीज़ बहुत बड़ी है।

विषयं रंजित येन, अनृतानन्द संजुतं।
पुण्य उत्साहं उत्पादी, दोष आनंदनं कृते॥१४२॥

.... '**दोष आनंदनं कृत**' यह बराबर है। '**दोष आनंदनं कृते**' है, अन्दर में है। यहाँ छपने में भूल हो गयी है। शब्दार्थ में है। ... क्या कहते हैं?

जो '**विषयं रंजित**' पाँच इन्द्रियों के विषयों में राग में रंजित होता है। उसका अर्थ- अरागी भगवान अपने आत्मा के आनन्द की रुचि छोड़कर, आनन्द का उत्साह नहीं है, वहाँ राग का उत्साह पड़ा ही है। आहाहा! समझ में आया? हो जाता है, वह मृषानन्द रौद्रध्यानसहित.. देखो! यहाँ रौद्रध्यान की व्याख्या चलती है। मृषानन्द-झूठा आनन्द। रौद्रध्यानसहित होता है। मिथ्यात्व में आनन्दवान खो जाता है। मिथ्याश्रद्धा पाप का परिणाम, उसमें लीन होता है, वही वास्तव में रौद्रध्यान है। यह रौद्रध्यान की व्याख्या। समझ में आया?

पुण्य उत्साह '**उत्पादी**' पुण्य करने में उत्साह पैदा कर लेता है। यह शब्द बड़ा है। जिसको अपना ज्ञाता-दृष्टा अखण्डानन्द का उत्साह, रुचि, दृष्टि नहीं और पुण्य विकल्प-शुभभाव आया, उस शुभ में सर्वस्व उत्साह कर दिया, रौद्रध्यानी है। खराब ध्यान करनेवाला है। सेठ! ... परन्तु तुमने दरकार की नहीं अभी तक। ओलम्भा देना पड़े या नहीं सेठ को? कुछ खबर नहीं। क्या चीज़ है, स्व क्या है, पर क्या है। ... अग्रेसरों ने ऐसा चलाया और त्यागी नाम धरनेवालों ने प्रोत्साहन दिया। पढ़ा-लिखा है, परन्तु वह पढ़ा-लिखा अपनी कल्पना से अर्थ करके दुनिया को चढ़ाया। क्यों? पण्डितजी! आपके ऊपर बहुत जिम्मेदारी है। समाज के अग्रेसर है। ... ऐसा है, वैसा है, सबकी जिम्मेदारी है। सेठ!

'**पुण्य उत्साहं उत्पादी, दोष आनंदनं कृते**'। उसका रौद्रध्यान है। आहाहा! मगनभाई! पुण्य उत्साह भी, जिसको पुण्य परिणाम में उत्साह लगा है, सावधानी उसमें लगी है, वह दोष है, बन्धन है, शुभभाव विकार है। उसमें आनन्द मानता है, वह रौद्रध्यान है। शब्द तो बहुत ... परन्तु कहाँ उसे (समझना है)। ये कमाना, कमाना, कमाना... कमाने में गया, सामनेवाले ने जो कहा, उसको जय नारायण! बस। पैसे खर्च कर दे। ग्यारह हजार ले जाओ, भाई! यहाँ कहते हैं, भगवान! वह तो राग आता है, मन्द राग हो, परन्तु उसमें

उत्साह इतना बढ़ा दे कि मानो मेरा कल्याण हो गया। समझ में आया? बहुत जीवों की मदद की, ऐसे शिक्षण में दे दिया, ऐसी पाठशाला बनायी। कौन बनाये? वह तो पर की पर्याय है, क्या तेरे से बनती है? तेरे भाव में राग की मन्दता हुई, उसमें उत्साह...

मुमुक्षु : .... हमारे पैसे से तो बनता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी उसका पैसा है (नहीं), कहाँ कि बने? धर्मचन्दजी!

मुमुक्षु : निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्बन्ध है। होता है उसके कारण से। निमित्त कहने में आता है, निमित्त से हुआ नहीं। बोलो तो मालूम पड़े। निमित्त है तो बना है, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : उसका निमित्त तो बनना न?

पूज्य गुरुदेवश्री : लेकिन... वही स्पष्टीकरण किया। वह बननेवाला है तो बना है। निमित्त है तो बना, तो निमित्त नहीं हुआ, कर्ता हो गया। सेठ! अभी पाठशाला बनी एक लाख की, पाँच लाख की। हमने बनायी। बिल्कुल झूठ है। वह बननेवाली पर्याय जड़ की होनेवाली थी। उस समय में उससे हुई है, तेरे आत्मा से नहीं।

मुमुक्षु : किसने बनायी?

पूज्य गुरुदेवश्री : बनायी जड़ ने।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त कहने में आया। निमित्त आया, इसलिए बना—ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : बनने में निमित्त का हिस्सा कितना टका?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक अंश टका नहीं। कहने में आता है। वह तो ... ऐसा निमित्त का ज्ञान कराया है। ... से बने और निमित्त से बने तो वह कर्ता हो गया। वह स्वतन्त्र अनन्त परमाणु की पर्याय परावर्तन में जब (होनेवाली थी तब हुई है)। यह क्या बना? देखो! कौन बनाता है यहाँ? रामजीभाई? कहाँ गये? अब तक तो रामजीभाई प्रमुख थे। अभी उसके हस्ताक्षर चलती है। बनाते हैं वह? बना सकते हैं? कहाँ गये शान्तिभाई?

भाई ! भगवान कहते हैं कि, तू तो ज्ञानस्वरूप है। ज्ञानस्वरूप पर की पर्याय में कितना हिस्सा डालता है ? जड़ की पर्याय में तेरा हिस्सा कितना गया है वहाँ कि तेरे से वह बना ? वीतराग मार्ग त्रिलोकनाथ परमेश्वर,... यहाँ कहा न ? ... '**दोष आनंदनं कृत**'। पुण्य (में) उत्साह दोष है। स्वभाव पवित्र है, उसकी तो तेरी दृष्टि है नहीं। उसमें तो उत्साह करता नहीं और पुण्यभाव में तेरा उत्साह चला गया। '**दोष आनंदनं कृत**' तूने दोष में आनन्द माना। मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया ? बात तो भाई, वस्तु है ऐसी, उसमें कोई गड़बड़ चले ? ... सम्यक् सच्चे ज्ञान में एक क्षण भी नहीं चले। ज्ञान, सच्चे ज्ञान में विरुद्धता हो तो एक कण नहीं चले। है न ?

इस तरह संसार का कारण दोष है, उसमें प्रसन्न होकर तन्मय... प्रसन्न होता है, प्रसन्न हो जाता है। खुश हो जाए, खुश हो जाए कि ओहो.. ! हमने तो क्या किया ! कितनी पाठशाला बनायी, कितने मकान बनाये, कितने ... बनाये, कितना फलाना बनाया। कौन बनाता है ? धूल में भी बना नहीं सकते। ... परद्रव्य में घुस जाता है ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह तो है नहीं। उससे परिणाम होता है, उसमें तुम क्या कर सकते हो ? वीतराग की वाणी ऐसी कहती है और वस्तु का स्वभाव ऐसा है। ...

परमाणु अनन्त पदार्थ है। छह द्रव्य में पुद्गल पदार्थ है या नहीं ? तो पुद्गल अनन्त है या नहीं ? तो अनन्त पुद्गल द्रव्य अपना रखकर पर्याय उसमें होती है या नहीं ? तो परकार्य में पर्याय उसके कारण से हो और दूसरा कहे कि मेरे कारण से हुई, (वह) मिथ्यादृष्टि मूढ़ वीतराग मार्ग लोप करके अपने में पर का कार्य मैंने किया ऐसा उत्साह करता है। शुभभाव में उत्साह करते हैं, यहाँ तो यह लेना है। समझ में आया ? ... उत्साह। ओहोहो ! चिल्लाने लगे, हों ! तारणस्वामी ने तो व्यवहार को उड़ा दिया है। ... ऐसा कहे। ... फिर भी वह मूल आचरण-सम्यक् आचरण नहीं है। जिससे मुक्ति है, वह आचरण, वह विकल्प आया वह नहीं। विकल्प आया वह तो पुण्यबंध का कारण है। आता है बराबर है, परन्तु आया तो धर्म हो जाएगा, करते-करते अपने में कल्याण हो जाएगा, ऐसा तीन काल-तीन लोक में है नहीं। देखो ! १६८। धर्म का स्वरूप।

शुद्ध धर्म च प्रोक्तं च, चेतना लक्षणो सदा।
शुद्ध द्रव्यार्थिकनयेन, धर्म कर्म विमुक्तयं॥१६८॥

देखो! प्र-उक्तं। भगवान ने ... ऐसा कहा। अहो! भगवान परमात्मा परमेश्वर वीतराग की वाणी में शुद्ध धर्म ऐसा कहा गया है। देखो! शुद्ध धर्म ऐसा कहा गया है कि सदा आत्मा का चेतना लक्षण है। राग, पुण्य, व्यवहार, विकल्प-फिकल्प उसका लक्षण है नहीं। समझ में आया? सदा चेतना लक्षण। '**चेतना लक्षणो सदा**'। भगवान आत्मा ज्ञान-दर्शन उसका सदा लक्षण है। क्या देह की क्रिया उसका लक्षण है? वह पूछा था न, (संवत्) १९९९ की साल में? चैतन्य लक्षण ... पदार्थ। कहो, समझे? आत्मा का लक्षण क्या? देह का ध्यान रखना वह। देह को सम्भालना, वह आत्मा का लक्षण। ... आत्मा का गुण क्या? १९९९ की बात है।

यहाँ कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन तो सही। '**शुद्ध धर्म च प्रोक्तं**' भगवान त्रिलोकनाथ ने तो वह कहा है, '**चेतना लक्षणो सदा**'। ... तेरा स्वभाव में लक्ष्य और ध्येय जाना, वह चेतना लक्षण से लक्ष्य होनेवाला है। समझ में आया? आत्मा का लक्ष्य प्रतीत अनुभव, कोई विकल्प दया, दान, व्रत, व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प से आत्मा का ध्येय पकड़ने में आता नहीं। क्योंकि उसका वह लक्षण नहीं। समझ में आया? सदा चेतना लक्षण भगवान आत्मा का लक्षण कहा है। समझ में आया? यह चेतना जानना-देखना, जानना-देखना, जानना-देखना, जानना-देखना... भगवान त्रिकाल स्वरूप त्रिकाली आत्मा लक्ष्य (और) चेतना लक्षण। लक्षण से लक्ष्य होता है। समझ में आया? पुण्य-पाप, दया, दान, व्यवहार, जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह राग है। वह राग चेतन का लक्षण नहीं है। समझ में आया? उसका लक्षण जानना-देखना, वह शुद्ध चैतन्य का लक्षण है। लक्षण से लक्ष्य पकड़ने में आता है। ऐसा भगवान की वाणी में आया है। समझ में आया? भावना है न। (इसलिए) बारम्बार वही शब्दों को दूसरी शैली से (कहते हैं)। कितनों को ऐसा लगता है कि वही बात बार-बार करते हैं। ... भावना के ग्रन्थ में ऐसी बात... समझ में आया?

'**शुद्ध द्रव्यार्थिकनयेन**'। देखो! शुद्ध द्रव्य की दृष्टि से। द्रव्यार्थिक शब्द है न? द्रव्य अर्थात् त्रिकाली शुद्ध वस्तु, अर्थिक अर्थात् प्रयोजन। नय अर्थात् ज्ञान का। जिसका ज्ञान का प्रयोजन शुद्ध द्रव्य है, उसको द्रव्यार्थिकनय कहते हैं। फिर से, '**शुद्ध**

द्रव्यार्थिकनयेन'। नय ज्ञान की पर्याय है, चेतना लक्षणवाली। समझ में आया? नयेन। शुद्ध द्रव्यार्थिक। शुद्ध त्रिकाली द्रव्य अर्थात् आत्मा, उसका जिस नय का प्रयोजन है, अर्थ अर्थात् प्रयोजन है, वह ज्ञान अपने शुद्ध द्रव्य को लक्ष्य करके, अपना प्रयोजन सिद्ध करती है, उस नय को शुद्ध द्रव्यार्थिक कहने में आता है। समझ में आया?

'**शुद्ध द्रव्यार्थिकनयेन**' शुद्ध द्रव्य की दृष्टि से त्रिकाल ज्ञायक चिदानन्द सत् स्वरूप परमानन्द एकरूप, अनन्त गुण भले हो, परन्तु उसका रूप एक अभेद है। उसकी दृष्टि। द्रव्यार्थिकनय है, वह नय ज्ञान है। और प्रतीत हुई, वह दृष्टि है। शुद्ध द्रव्य की दृष्टि से... समझ में आया? वह धर्म, अपना शुद्ध स्वभाव त्रिकाल, उसको जिस नय ने दृष्टि और लक्ष्य में लिया, जो पर्याय निर्मल प्रगट हुई, वह धर्म सर्व प्रकार के कर्म से रहित है। ऐसी मोक्षमार्ग की श्रावक की पर्याय (है)। यह श्रावकाचार चलता है। भगवान का नाम स्मरण करना, वाणी याद करना, वाणी सुनना सब विकल्प है। देखो, क्या कहते हैं?

'**शुद्ध द्रव्यार्थिकनयेन, धर्म कर्म विमुक्तयं**'। शुभाशुभ विकल्प ऐसा जो भावकर्म, उससे वह द्रव्य विमुक्त है। समझ में आया? द्रव्यकर्म की बात है नहीं, वह तो दूर रह गया। आत्मा, द्रव्यकर्म जड़ उससे भिन्न (है)। समझे? नोकर्म शरीर, वाणी से भिन्न और भावकर्म-पुण्य-पाप का भाव। '**धर्म कर्म विमुक्तयं।**' धर्म सर्व प्रकार की.. विमुक्त शब्द पड़ा है न? '**विमुक्तयं**' मात्र मुक्त शब्द नहीं है। बाद में कर्म निकाला। '**धर्म कर्म विमुक्तयं**' भगवान आत्मा अनन्त गुण राशि, उसे द्रव्यार्थिकनय से लक्ष्य में लेकर जो पर्याय में निर्मल अवस्था, सम्यग्दर्शन-ज्ञान अरागी परिणति हुई, उसको भगवान धर्म कहते हैं। वह धर्म मुक्ति का उपाय है। दूसरा कोई मुक्ति का उपाय है नहीं। समझ में आया? यह '**धर्म कर्म विमुक्तयं**'। सब कर्म-कार्य से विमुक्त है। ओहोहो! समयसार में छट्ठी गाथा में आता है। ... कहो, समझ में आया? उसको धर्म कहते हैं। वीतराग की वाणी में उसको धर्म कहा है। उससे विपरीत कहे, वह वीतराग की वाणी और वीतराग को जानते नहीं। (उसे) वीतराग मार्ग का लोप करनेवाला कहते हैं। समझ में आया? १६८ (हुई)। १६९।

धर्मं च आत्म धर्मं, रत्नत्रय मयं सदा।
चेतना लक्षणो यस्य, तस धर्म कर्म विवर्जितं॥१६९॥

इसमें विशेष स्पष्ट किया है, हों! रत्नत्रय कौन, कैसा रत्नत्रय? लोग कहते हैं, रत्नत्रय व्यवहार, व्यवहार, व्यवहार। पण्डित लोग बहुत कहते हैं। पण्डित जितने परिचय में आये, वह बहुत कहते हैं।...

'धर्मं च आत्म धर्मं' आत्मधर्म को भगवान वीतरागदेव धर्म कहते हैं। पुण्य-पाप का विकल्प, व्रतादि का विकल्प आत्मधर्म नहीं, वह तो राग है। समझ में आया? अथवा धर्म आत्मा का स्वभाव है। आत्मा ज्ञानानन्द शुद्ध स्वरूप, उसकी पर्याय प्रगट होना, वह स्वभाव आत्मा का धर्म है। वह तीनों कालों में... देखो! सदा कहते हैं न? सदा अर्थात् तीनों कालों में। कोई में ऐसा है कि पहले व्यवहाररत्नत्रय धर्म है और बाद में निश्चयरत्नत्रय में श्रावक को पुण्य का धर्म है। शास्त्र में आता है न? व्यवहार चले वहाँ आता है। श्रावक को पूजा और क्या कहते हैं? दान। दान, पूजा नित्य धर्मो। रयणसार में आता है। वह तो व्यवहार पुण्य की बात की है। ऐसा पुण्य आता है, पाप से बचने को। ये धर्म तो **'रत्नत्रय मयं सदा'**। तीनों काल में श्रावकाचार में, भूतकाल, वर्तमान और भविष्य में।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इमसें तो सब आया। भरत में, ऐरावत में या महाविदेह में कहीं भी सच्चा श्रावक हो, वह **'रत्नत्रय मयं सदा।'** यह श्रावकाचार है। श्रावक में तीन रत्नत्रय होते हैं। पंचम गुणस्थान में भी शुद्ध स्वरूप की प्रतीत, अनुभव, उसका ज्ञान और लीनता—यह तीनों रत्न श्रावक को भी है, ऐसा कहा। देखो! मुनि को ही तीन रत्न होते हैं और श्रावक को नहीं, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : गप्प मारते हैं। यह तो उसको कठिन लगे। झूठा है, ऐसा ही कहते हैं। जिसने सुना हो, उसे खबर भी नहीं होती।

'रत्नत्रय मयं' अभेद कहा न? भाई! देखो! **'रत्नत्रय मयं'** भगवान आत्मा जैसा अनन्त गुण का एकरूप शुद्ध है, उसकी दृष्टि, ज्ञान, लीनतामय आत्मा हो गया। आत्मा हो गया, ऐसा कहते हैं। तीनों पर्याय में आत्मा अभेद हो गया। रत्नत्रयमय है, आत्मधर्म। उसका नाम आत्मधर्म, उसका नाम श्रावकधर्म, उसका नाम रत्नत्रयधर्म, उसका नाम

मोक्षमार्ग। घर के पुस्तक के अर्थ की खबर नहीं। पैसे की सब खबर है। इतना पैसा है, इतना ब्याज आता है, इतना ... समझ में आया ?

'चेतना लक्षणो यस्य' क्या कहते हैं ? जिसका लक्षण चेतना है, यह स्व अनुभव है। चेतना है न, चेतना-अनुभव। कितने शब्द लिये हैं, देखो ! एक तो धर्म तो आत्मा का स्वभाव, तीनों काल में रत्नत्रयमय है। निश्चयरत्नत्रय, हों ! ... शुद्ध चैतन्यमूर्ति प्रभु, उसकी अन्तर-दृष्टि, ज्ञान और लीनता का जितना अंश प्रगट हुआ, वही रत्नत्रय धर्म, वही आत्मधर्म। वही तीनों काल में रहनेवाला धर्म। और **'चेतना लक्षणो यस्य'**। उसका अनुभव, वह धर्म। रत्नत्रय का अनुभव स्वभाव का करना, वह धर्म। कैसा है ? सर्व कर्म की उपाधि से रहित है। **'कर्म विवर्जितं'** .... लिया है। विमुक्तं। विमुक्त कहो या विवर्जितं, विवर्जितं। जिसमें जड़क्रिया नहीं। नोकर्म। जड़कर्म की क्रिया-पर्याय नहीं और पुण्यादि विकल्प भावकर्म की क्रिया नहीं। ऐसा **'कर्म विवर्जितं'** अपनी पर्याय में आत्मस्वभाव सर्वज्ञ ने कहा ऐसा आत्मा, हों ! अज्ञानी कहे, वह आत्मा नहीं। ऐसे आत्मा की दृष्टि, ज्ञान और लीनता वह सर्व **'कर्म विवर्जितं'** है। उसमें रागादि के परिणाम से रहित को... देखो ! **'तस धर्म कर्म विवर्जितं'** वह धर्म कर्म की उपाधि से रहित है। यहाँ भी ... कहा। समझे ? धर्म कहीं बाहर में नहीं है। बाहर का अर्थ शरीर, वाणी की क्रिया में तो नहीं है, परन्तु पुण्य के परिणाम में धर्म नहीं है। वह बाह्य (है)। १६९ हुई। समझ में आया ? शुभ विकल्प उत्पन्न होता है, वह भी बाहर है, अन्तर स्वरूप में नहीं है। पुण्य परिणाम में धर्म नहीं। बाहर में नहीं, अन्तर में है। उसे श्रावकाचार कहने में आता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)